INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 3 | APRIL - 2023

नारी विषयक चिंतन और कृष्णा सोबती का समीक्षात्मक अध्ययन

मालती कुशवाहा[1] & प्रो. दिनेश कुशवाह[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांशः–

स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी कथा–साहित्य में एक संक्रमण की स्थिति दिखाई देती है जो नई कहानी के विकास की पृष्ठभूमि बनती है। आजादी मिलने के बाद जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिवर्तन होने चाहिए थे वे नहीं हुये। गाँधी जी और नेहरू ने जिस समाज की कामना की थी वह हमें नहीं मिला इन परिस्थितियों, विसंगतियों, चुनौतियों से जूझते हुए हिन्दी कथा साहित्य ने अपना नया रूप ग्रहण किया।

संकेत शब्द : नारी, चिंतन, कृष्णा सोबती एवं कथा–साहित्य।

प्रस्तावना :

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिला लेखिकाओं का एक वर्ग उठ खड़ा हुआ। समाज में फैली अराजकता, अस्थिरता, भष्टाचार को अपनी–अपनी तरह से इन लेखिकाओं ने व्यक्त किया। आज महिला कहानी उपन्यासों में दो पीढ़ियां एक साथ सृजन में लगी हुई हैं। पहली पीढ़ी मे वे लेखिकाएं आती हैं जो नयी कहानीकार के दौर के आस–पास में लिखती आ रही हैं और दूसरी पीढ़ी की वे लेखिकाएं आती हैं, जिन्होंने आठवें दशक में लिखना आरम्भ किया। पहली पीढ़ी की लेखिकाओं में शशि प्रभा शास्त्री, शिवानी, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारो, उषा प्रियम्वदा, आदि उल्लेखनीय हैं। दूसरी पीढ़ी में मृणाल पाण्डेय, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ आदि लेखिकाओं के नाम गिनाए जा सकते हैं। प्रत्येक युग की अपनी चेतना होती है और साहित्य में उसका प्रतिफलन होना स्वाभाविक है। भारतीय समाज संस्कृति, राजनीतिक, धर्म और दर्शन आदि के बारे में जनता के विचार के अनुरूप, युग, चेतना विकसित होता है। साहित्यकार अपनी कृतियों के द्वारा इसका संप्रेषण करता है और वह अपने समाज को साहित्य में इस प्रकार उतारता है कि वह जीवन का प्रतिबिम्ब लगता है।

भारत एक विशाल देश है। यह अनेक जातियों, धर्मों, संस्कृतियों और भाषाओं का संगम है। पंजाब में मुख्य रूप से हिन्दू सिक्ख और मुस्लिम तीनों धर्म के लोग रहते हैं। हिन्दू और सिक्खों में अनेक उपजातियाँ समान है। उनके रहन–सहन के नीति–नियम भी बहुत कुछ समान ही हैं। चाचा महरी सिक्ख परिवार की है, जिसका प्रेम गणपत शाह से हो गया था, शादी के बाद में गणपत शाह की मृत्यु हो गयी। चाची महरी अब भी शाही के परिवार में इज्जत के साथ रहती हैं। यह सही है कि गुरु गोविन्द सिंह ने मुगलों से कई बार लड़ाई की थी। लेकिन ये राजनीतिक लड़ाइयाँ थो। उनका बैर अत्याचारियों से था, महाराज रणजीत सिंह के बजीरों में मुसलमान भी शामिल थे। महाराज रणजीत सिंह के बजीरों के नाम तो सुने होंगे खलीफा नुरुलद्दीन, फकीर अजीउद्दीन और ऐसे ही बेहिसाब अमीर उभरा और सरदार जागीरदार हैं। हिन्दू और मुसलमान शताब्दियों से

पंजाब के गाँव में साथ–साथ रहते हुए पारस्परिक सहयोग और एकता का जीवन व्यतीत करते रहें। हिन्दुओं और मुसलमानों के रहन–सहन और रीति–रिवाजों में समानताएं हैं। शाहनी अपनी गोद भरने के लिए बाबा फरीद से मन्नत मांगती है। गरीब नबाज आपके हुकम बंदी आपके दरबार में शीश झुकाने आयी है। मेहरा वाला तरी नजरे हो सीधी तो शाहों के घर भी झण्डा फिरे। गाँव के हिन्दू मुसलमानों के धार्मिक–विचारों में तो अंतर होता है। लेकिन सामाजिक, सांस्कृतिक आचार–विचार में उत्तर दिखाई नहीं देता। काशी शाह कहते है, घर में गाँव के मुसलमान जब मस्जिद के निर्माण के लिए चंदा मांगने आये तो शाहजी मस्जिद और मंदिर को एक मानते हुए सहर्ष चंदा देते हैं। भ्राजी ऐसे पुण्य काम में सोच कैसी मंदिर मस्जिद मालिक के ही स्थान।

कृष्णा सोबती के 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रों मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'ऐ लड़की', 'दिलों दानिश' आदि सभी रचनाओं में कुछ यादगार स्त्री छवियां उभरती हैं, जिनमें परम्परागत मान्यताओं के प्रति अस्वीकार का बोध सामाजिक संरचनाओं के निषेध मात्र की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि सामाजिक स्थितियों को पलटकर देखने ओर उनके भीतर के सत्य को उद्घाटित करने की कोशिश है। यह स्त्री आकांक्षा का वह सच है जो सांस्कृति और नैतिकता के ढोंग में सदा अदृश्य रखा गया कृष्णा जी का लेखकीय स्वभाव उन्हें साहित्यकारों की उस अलग पंक्ति में स्थापित करता है, जिन्होंने जीवन में आसान समझातों की राह कभी नहीं अपनाई। इस पूरी स्थिति में विलक्षण यह है कि अपनी दबंग छवि के बावजूद कृष्णा जी ने अपने लेखन को कभी स्त्रीवादी मुहावरे से जोड़कर देखा जाना स्वीकार नहीं किया। रचनाकार का यह आग्रह अपनी जगह बिल्कुल सही कि भारतीय समाज की लाख बंदियों के बावजूद खुद मुफ्तार स्त्रियाँ हमेशा रही हैं और उनका होना ही जीवंत धड़कते समाज के होने का सबूत है।[1]

'ऐ लड़की' की अम्मू चाहे अपनी बेटी के भावी अकेलेपन की कितनी ही चिंता करे लेकिन माँ और बेटी खूब जानती हैं कि संग जीने में, रहने में, कुछ रह जाता है। इसलिए माँ जब बेटी से पूछती है कि अकेले रहते हुए जरूरत पड़ने पर वह किसे आवाज देगी तो बेटी निरांक भाव से कह पाती है, मैं किसी को नहीं, जो मुझे आवाज देगा मैं उसे जबाव दूंगी। मैं उसे साहित्य में स्त्री–मुक्ति के प्रत्यक्ष मुहावरे से बहुत पहले कृष्णा सोबती की स्त्री किरदार अपने होने में पूरी तरह आश्वस्त हैं। स्त्री रचनाशीलता ने स्त्री की सामाजिक स्थिति, उसकी भौतिक उपस्थिति तथा अपने समय को परिभाषित करने की उसकी कोशिश को अनेक स्तरों पर अभिव्यक्त किया, नई कहानी के दौर में अधिकांश कथा साहित्य स्त्री अस्मिता के निजी सवालों और परिवार में उसके अस्तित्व व नैतिकता को लेकर बनी रही। अंतर्विरोधपूर्ण स्थितियों का लेखा–जोखा है। मनः स्थिति व परिस्थिति के द्वन्द में उपजी जीवन स्थितियों के बीच स्त्री जीवन की विवशता को बखूबी पढ़ा जा सकता है जिससे यह उजागर हो जाता है कि परिवार क ढांचे के भीतर ही दमन के कितने रूप हो सकते हैं। कृष्णा सोबती का कथा साहित्य परिवार और पितृ सत्ता से एक भिन्न पर संवाद स्थापित करता है।

विश्लेषण –

कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र अपने में एक पहेली हैं। उनके यहाँ स्त्री के हर रूप की झलक है। समर्पिता, आज्ञाकारी, पम, निमग्न, गृहस्थी में खटती लेकिन संतुष्ट स्त्रियाँ, स्वामिनी, सेविका, रखैल आदि। कृष्णा जी की सिरजी पात्रों की खासियत यह है कि वे सब अपनी जिंदगी, अपनी शर्तों पर जीती है। मनुष्यता के स्तर पर वे महान भले ही न हो लेकिन तंग दिल भी नहीं है। वे दुनिया के उस खेल को समझती हैं। जहाँ स्त्री जीवन की सार्थकता अपने स्वामी को खुश रखने में है या फिर उपजाऊ धरती हो जाने में, यह सब पितृ सत्तात्मक समाज की पारिवारिक व्यवस्था के असुविधाजनक सवाल हैं, जिन्हें कृष्णा सोबती ने समय से बहुत पहले बेपर्दा किया लेकिन बातौर लेखिक स्त्री लेखन की सीमा में अपनी पहचान बनाना भी उन्हें मंजूर नहीं। उन्हें इस तरह के वर्गीकरण पर खासा एतराज रहा, अपने सर्जन के समान उनकी कथा कहानियों के पात्र भी अदम्य साहस के बल पर साधारण सी दिखाने वाली जीवन स्थितियों में अपनी सच्ची खरी उपस्थिति से एक नए मोड़ पर लाकर खड़ा कर देते हैं।

'मित्रों मरजानी' को पढ़ते हुए आप कृष्णा सोबती को एक क्षण के लिए भी भूल नहीं सकती। अपने खास तेवर से साठ के दशक में स्त्री अस्मिता और नैतिकता के स्थायी द्वन्द्व के बीच वे मित्रो की सजीव उपस्थिति में मानों यह दर्ज करना चाहती है कि स्त्री कारक रूप वह भी है जो समाज की सभी रूढ़ मान्यताओं के बीच अधिक सच्चा व मानवीय हैं। अपने होने और जीने का अर्थ तलाशती मित्रो जिन आकांक्षाओं का आग्रह

करती है, उससे समाज की स्थिर परम्पराओं, मर्यादाओं एवं नैतिकताओं में विस्फोट अवश्य पैदा होता है। यह परम्परागत मान्यताओं का निषेधात्मक विरोध उतना नहीं जितना कि स्थिति को पलटकर देखने की कोशिश जिसमें एक नए जीवन सत्य का अहसास होता है। जो स्त्री के मातृत्व का देवत्व से गढ़ी महिमा मंडित छवियों के विरोध में उसकी कामनाओं व इच्छाओं का बता देती है, स्त्री को यह छवि अधिक वास्तविक व यथार्थ है।

''मित्रो की देह की आदिम
आँगन किसी भी अपराध
बोध से परे हैं। वह सिर्फ
परिवार की बहू, बेटी,
भावज और सरदारी भी
पली ही नहीं.....वह
कुछ और है। ... कुछ और
भी वह अपनी संज्ञा में
ढूंढती है अपनी अस्मिता
को यह मैं हूँ ..... मैं हूँ न
मैं भी परिवार के
बीचोबीच उसकी
छटपटाहट एक शोर पैदा
करती है एक देह भाषा
गढ़ती है।''[2]

मित्रो अपने शारीरिक सौंदर्य पर स्वयं तो रीझती ही है और साथ ही यह भी चाहती है कि और लोग भी उसके इस भाव को स्वीकारें। वह गृहस्थी की लच्छमय की लीक नहीं मानती, परिवार के अनुबंधों को स्वीकार नहीं करती, उसके तन ऐसी हौस व्यापती है जो पारिवारिक मर्यादाओं के विपरीत पड़ती है, उसका पति सरदारी उसकी यह प्यास को नहीं समझता, इसलिए मित्रो अपने जेठ बनवारी से ही यह अपेक्षा करने लगती हैं।

''अनोखी रीत इस देह–तन की
बूँद पड़े तो थोड़ी न पड़े तो थोड़ी
आज भडवा बनवारी ही जो बनाव
सिंगार देखता''[3]

एक भारतीय परिवार ही बहू का अपने जेठ के प्रति ऐसा भाव उसके चरित्र पर प्रश्न चिन्ह लगाने के लिए काफी है। इसलिए वह उस संयुक्त परिवार में 'मिसफिट' हो जाती है। इस दृष्टि से डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का मत महत्वपूर्ण है – ''मित्रो इस कहानी में संयुक्त परिवार की भीरु आत्मतुष्ट दुनिया के सर पर पड़ने वाली डंडे की चोट है।''[4]

यह स्थिति है जहाँ विवाह दो शरीर का संयोग नहीं दो आत्माओं का पवित्र बंधन माना जाता है। मित्रो के इस पूरे आचरण में कहीं भी पाप–बोध या कुंठा का भाव नहीं हैं क्योंकि उसके लिए उसकी पहचान भी है, अभिव्यक्ति भी समस्त पारिवारिक मर्यादाओं को परे रख उसमें अपनी बात खुलकर कहने की शक्ति भी है, परिवार वह संस्था है जो स्त्री के स्त्रीकरण के लिए उत्तरदायी है, वह स्त्री के त्याग की अपेक्षा करते, उसे लगातार उसके अधिकारों से वंचित करने के लिए लगी रहती हैं। मित्रो की दैहिक चेतना इन परंपराओं और नैतिकताओं के आवरण को चीरती हुई ऐसे प्रश्न उपस्थित कर देती है जा महत्वपूर्ण होते हैं। पितृसत्ता स्त्री देह पर नियंत्रण से ही टिकी हुई है और इसे सुरक्षित रखने के लिए पुरुष युद्ध व हिंसा की किसी भी सीमा तक जा सकते है। देह–विदेह के दार्शनिक आख्यानों से स्वयं को गौरवान्वित करने वाली सांस्कृतिक में देह की अभिव्यक्ति लगभग, निषिद्ध मित्रो इस विचार के लिए चुनौती है। मित्रों के चरित्र में उभरता द्वन्द्व स्त्री रचनाशीलता व स्त्री चिंतन का ऐतिहासिक द्वन्द्व है। स्त्री अस्मिता और यौनिकता के प्रश्न आज भी पूरे विमर्श के केन्द्र में है, स्त्री के लिए विशेष रूप से निश्चिय की गई मौन सुमिता भारतीय पारिवारिकता का आधार है। 'ऐ लड़की' में अम्मू का कथन – ''देह तो एक वसन है। पहना तो इस ओर चले आए उतार दिया तो पर लोक'',

कबीर की उसी दार्शनिक उदात्तता को प्रतिध्वनित करता है, 'जहाँ फटा कुंभ जल–जल ही सामना' यही सार तत्व हो इस सब के बीच उछाम इच्छा और वासना से 'लक–दक' मित्रो की दैहिकता परिवार और समाज के लिए बहुत बड़ी पहेली है। पूरे उपन्यास के लिए प्रश्न बार–बार आता है कि मित्रो की आकांक्षाओं के अधूरेपन के लिए उसका पति कितना उत्तरदायी है, उसकी सास धनबंती अपने पुत्र की संग सेहत को लेकर चिंतित है। वह बड़े बेटे और बह् से अलग–अलग टोह लेना चाहती हैं कि मित्रो के आरोप कहीं सच्चे तो नहीं पूरे उपन्यास में कोई भी आधिकारिक तौर पर नहीं कह पाता कि सरदारीलाल में कोई कमी है बस यही कि मित्रो जैसी स्त्री उसके बस से बाहर है, मित्रो की इच्छा कामना को निभा पाना साधारण मर्द के लिए संभव नहीं, सरदारी लाल का अपनी पत्नी से हर रोज का धौल धप्पा उसकी अपनी सीमाओं के साथ–साथ मित्रो को लेकर चलने वाले अपवादों से भी जुड़ा है। मित्रो अपने जिस रूप को अपनी ताकत मानती है और हर क्षण यह तौलती रहती है कि कौन मर्द जाना होगा जो इस पर न रीझ जाए, वही सरदारी लाल के दिल में कांटे सा चुभता है, उसकी परेशानी इस बात से बढ़ती कि मित्रो अपने देह पर अपने पति के एक छत्र अधिकार को खारिज कर रही है। असल में मित्रो के पास चीजों को तौलने–परखने की अपनी दृष्टि है वह जिन्दगी को सही और गलत के खानों म बाँटकर नहीं देखती बल्कि उसे वह जीवन की समग्रता में देखती है। इसलिए जब सरदारी के आरोप लगाने पर मित्रो से पूछा जाता है कि वह सच है या झूठ उसका उत्तर स्पष्ट है। सज्जनों यह सच भी है और सच के बीच की विभाजक रेखा अत्यंत क्षीण हैं, संदर्भों के बदलने से मानवीय अनुभव का हल्का या सस्पर्श भी हमारी पूरी मूल्यगत चेतना को हिलाकर रख देती है। मित्रो ने जीवन का यही अर्थ समझा है। सोने सी अपनी देह झुर–झुरकार जला लूँ या गुलजारी देवर की घरवाली की सुई–मिलाई के पीछे खान खपा लूँ। मित्रो का यह जीवन–बोध परिवार की अवधारणा के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। पितृ सत्तात्मक समाज में यद्यपि स्त्री–देह की आकांक्षा सबसे प्रबल है फिर भी स्त्री के लिए वह वर्जित ही है। साठ के दशक में मित्रो की यह समाज उसके लिए लगभग अप्रत्याशिता हैं जिसने रचना और आलोचना को समान रूप से अपने सौन्दर्य पर रीझने की कहानी में जितनी 'लक–दक' दैहिक आकांक्षा है, उतनी ही 'लक–दक' पारिवारिकता भी है। हँसता–बोलता गुरुदास–धनवंती का परिवार जिसकी रौनक भी बोली ठोली भारने वाली मझली बहू सुमित्रावती (मित्रो) का ही हैं। उपन्यास का आरंभ जिस घर की पहचान से होता है वह कृति के अंत तक बनी रहती है, उपन्यास की शुरुआत इन पंक्तियों से होती हैं। ''मटमैले आकाश का एक छोटा सा टुकड़ा रौशनदान से उत्तर चौकोर शीशों पर आ झुका तो नींद में बेखबर सोए गुरदास सहसा, अचानक उठ बैठे बाह बढ़ा खिड़की से चश्मा उठा आँखों पर रखा और कमरे की पहचान करने लगें, यह रहा कोने में रखा अपना छाता, खूंटी पर लटका दिया लम्बा कोट और बोला अपना ही घर है।''[5]

कृष्णा सोबती के प्रसिद्ध उपन्यास 'जिंदगीनामा' का वैचारिक चिंतन मानवीय चेतना से मुक्त हैं। उन्होंने इसमें तटस्थ दृष्टिकोण से स्थितियों को निर्भयतापूर्वक अंकित किया है और मानव कल्याण की भावना की पुष्टि की है। उपन्यास के शुरू से ही लोक–कल्याण की कामना बरकरार है। सोहणे दिन अनुजों के साथ लगे रहें। देश की विरासत से लेखिका के व्यक्तित्व का गहरा संबंध है। उनके अनुसार देश ही व्यक्ति का गहरा संबंध है। उनके अनुसार देश ही व्यक्ति की आत्मा में कविता दर्शन, चिंतन और संगीत बनकर प्रवाहित होता है। 'जिस देश ने मुझे काया दी हैं– आत्मा दी हैं, दृष्टि दी, उसी ने ऋतुओं से मेरा स्नेह को लहकाया है। मुझमें वह सरकार रचाया है जो मेरे मिज़ाज तस्वीर में और मेर अपनेपन में मौजूद हैं। वही अपने अतीत और वर्तमान मुझमें उजागर हैं। उन दिनों गाँवों में शाह के जिम्मेदारों का दबदबा कायम था। उपन्यास में बड़े शह और उनके छोटे भाई काशीशाह के परिवारों के अलावा कई बंधुजन भी हवेली में रहते थे, घर के रसोई मे शाहनी के अलावा माँ, बीबी और चाची महरी आदि औरते भी हैं। उनकी मदद के लिए कतारों हैं, जब काग से फुरसत मिलता है, गाँव की नारियां हवेली में चरखा लेकर आती हैं, काटते वक्त वे लोकगीत गाती हैं और लोक कथाएं सुनती रहती हैं।[6]

परिवार सबसे छोटा सामाजिक इकाई होता है। पुरुष समाज में भी परिवार में नारी का अपना महत्व है, उसकी समस्याएँ और यातनाएँ हैं। गुजरा करने वाला व्यक्ति की नारियाँ भी सामाजिक जीवन में अनेक परिस्थितियों से गुजरती हैं। वहाँ की नारियाँ कठिन मेहनत करती हैं। सुबह उठकर छाछ बिलोती हैं, वेरियो वाली कुएं से पानी लाती हैं। खेत में पुरुषों के साथ हाथ बटाती हैं, 'लोहड़ी' पहले शाहनी ने हवेली में त्रिजन बिठाया था। गाँव की नारियाँ अपने चरखे लेकर आयी और कटाना शुरू किया। कभी–कभी लड़किया आँगन में

रंगरेज के लिए बैठ जाती हैं। रंग–बिरंगी कलियाँ, हवा से सुखाती हैं। लड़कियाँ बूटियों की मदद के लिए तैयार हैं। इस तरह धरती की खुशहाली और नारी जीवन की सुंदर झाकियाँ सामने आती हैं।

गाँव की नारियों के जीवन में पीड़ा, विषाद और झगड़ा आदि स्थितियाँ भी कम नहीं हैं। माँ, बीबी का पति इलाहिया शहर में एक कजरी के जाल में फस गया है। इलाहिया की वापसी की प्रतीक्षा में माँ, बीबी घुटती जाती हैं। नक्षत्र और सपली दुःख से पीड़ित हैं। वह छोटे शाह के पास दौड़ आती है। देवर तू साधू पुरुष है। तेरे मुँह से निकला वचन व्यर्थ न जायेगा या ऐसा मंत्र दे कि घर वाला सौतन से बेमुख हो जाए या मेरे कलेजे को चैन पड़े, 'रसूली और उसका साझ सजद बीबी का झगड़ा, उसका समाधान, चाची महरी के वर्षों के बाद अपने देवर से मिलने जाना, अपने पुत्रों को कौज में भेजती माताओं की वेदना आदि नारी जीवन से जुड़े अनेक संदर्भों में लेखिका ने आत्मीयता से उपन्यास में अंकित किया है।

कृष्णा सोबती ने कस्बों, महानगरों से लेकर दूर–दराज के देहात को, देहात की हलचल को, अपनी खोज की सम्भावनाओं से सक्रिय रखा है। लोकतंत्र की खूबियों और कमजोरियों को जिनकी मनोदैहिक और मनोवैज्ञानिक संवदना को उनकी महत्वाकांक्षाओं के समानान्तर एक लम्बे कालखण्ड का अंकन किया है। भाषाओं की रचनात्मक परिकल्पनाएं सिर्फ प्रबुद्ध वर्ग की ही ओर प्रवाहित नहीं। उन्होंने राष्ट्र के पिछड़े अशिक्षित को उसके निचले जीवन–स्तर की मजबूरियों, विवशताओं के साथ लेखन केन्द्रित किया है।

शब्दों के आलोक में नारी दृष्टि की उपलब्धियों को रेखांकित करती हुई 'कृष्णा सोबती जी ने लिखा है– ''भारत की कामकाजी स्त्री अपनी पारम्परिक लोक को फलाँशकर एक व्यक्ति बनने की कोशिश में हैं। स्त्रीत्व की भूमिका में मात्र बच्चे बनाना, परिवार का पालन–पोषण ही महिलाएं करती हैं। भारतीय स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता एक बड़े पैमाने पर लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए गुणा है। जीवन स्तर ऊँचा करने में और वैचारिक तथा उत्पाद इकाई के स्वरूप में उभरने की स्त्री की क्षमता संदेह से परे हैं। आर्थिक ऊर्जा ने भारतीय नारी को एक नई भंगिमा दी है। उसके मर्म का रहस्य और प्रजनन शक्ति अब उसके लिए अलौकिक की लौकिक शक्ति को परिभाषित करते हैं। भारतीय मानस ने प्राचीनकाल से स्त्री पुरुष के भावनात्मक और दैहिक सम्बंधों पर इतना कुछ देखा और कहा है कि उसकी जिज्ञासा और प्रसंग अपने यहाँ से हटकर अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क पर ही केन्द्रित है। हमारे यहाँ की लोकप्रिय औरतें फिल्मों में इस रेंज को इतना उधाड़ा है कि मात्र क्लीनिकल बना दिया है। एक कथा कार के रूप में पीड़ित महिलाओं के अनुभवों की बात व्यक्त करती हुई कृष्णा जी ने देश के विभाजन की दशा को इस प्रकार करती है? शरणार्थियों के शब्दों के आलोक में – स्वतंत्रता के पचास साल के परिवार जब मिलते हैं तो वे विभाजन के बारे में बात नहीं करते क्योंकि एक बेहद दुखद विषय है। यह सभी को कष्ट देता है। उन्होंने इस सच्चाई के प्रति ज्यादा संवेदनशीलता दिखाई कि य बदनसीब औरतें उनके परिवार का हिस्सा हैं, वे उनकी बीबियाँ, बहने और बेटियाँ हैं।[7]

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः कृष्णा सोबती की बृहत्तर कथा–संसार में जिन पात्रों के चरित्रों की उपस्थिति हैं वह उनके खामख्याली चित्रण नहीं बल्कि वे हाड़मॉस से बनी धड़कती हुई जीवित इकाइयाँ, वे केवल शारीरिक इकाई ही नहीं, बल्कि चैतन्य का प्रमाण भी हैं। वे शोषित हैं या पौरुषेय शक्तियों के अधीन, पर वे आजादी की खिड़की खोलने को अपराध नहीं मानती, कहीं–कहीं बुमुक्षित किन करोति पायम् की सीमा तक भी उनके स्त्री–चरित्र अपने कृत्य पर क्षुब्ध नहीं होते, वे इसे मानवीय प्रवृत्ति मानती हैं। स्त्री विमर्श के नाम पर जिस तरह की कहानियाँ इधर कुछ दशकों में लिखी गई हैं या जैसे स्त्री को लेकर रचे गए हैं। वे अनुभूत नहीं बल्कि प्रयत्नपूर्वक गढ़ी गयी स्त्रियों का संसार है। कृष्णा सोबती गढ़ने में नहीं रचने में रुचि लेती हैं। इसीलिए उनकी स्त्रियाँ प्रगतिकामी और स्वतंत्र लगती हैं।

संदर्भ –

[1] कृष्णा सोबती – जिन्दगीनामा, पृष्ठ 41

[2] कृष्णा सोबती – लेखन समालोचन (नेट से लिया गया)

[3] कृष्णा सोबती – लेखन समालोचन (नेट से लिया गया)

[4] कृष्णा सोबती – लेखन समालोचन (नेट से लिया गया)
[5] कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहवत, पृष्ठ 405
[6] कृष्णा सोबती – जिन्दगीनामा, पृष्ठ 11
[7] कृष्णा सोबती – शब्दों के आलोक में–स्वतंत्रता के पचास साल, पृष्ठ 61